Shodhshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2018 SISRRJ | Volume 1 | Issue 1 | ISSN : 2581- 6306

भारतीय संविधान में शिक्षा के सूत्र

डॉ0 विकास चन्द्र वशिष्ठए, एसोसिएट प्रोफेसर
राजनीति विज्ञान विभाग, मेरठ, कॉलेज

सारांश– शिक्षा आत्मज्ञान एवं आत्म प्रकाशन का श्रेष्ठत माध्यम है। शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य मानव को पूर्ण बनाना है। एक सभ्य समाज में शिक्षा ही नागरिकों को आर्थिक, राजनीतिक एवं सामाजिक समस्याओं के प्रति जागरुक करती है। अपनी इसी सोच के आधार पर भारतीय संविधान निर्माताओं ने हम भारतीयों को शिक्षा का मौलिक अधिकार प्रदान किया। शिक्षा के माध्यम से ही देश में आर्थिक एवं सामाजिक विषमताओं को समाप्त किया जा सकता है। यदि हमें लोकतंत्र को सही अर्थों में सफल बनाना है तो समस्त प्रकार के भ्रमों से बचकर और व्यक्तियों की बाते कम सुनते हुए उस संविधान की शरण में जाना ही होगा। जो जनभावनाओं का नेतृत्व करता है। नागरिकों को दिया गया व्यस्क मताधिकार तभी उपयोगी है।

मुख्य शब्द–भारतीय, संविधान, शिक्षा, आत्मज्ञान, आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक,राष्ट्र।

किसी राष्ट्र की शिक्षा प्रणाली उस राष्ट्र के वर्तमान और भविष्य के संभाव्य स्वरूप का प्रतिबिम्ब होती है। अर्थात् शिक्षा के स्वरूप, उसकी योजनाओं तथा कार्यक्रमों में उस राष्ट्र के आदर्श, आकांक्षाएँ–महत्वकांक्षाएँ प्रतिबिम्बित होनी चाहिए। ऐसा केवल उसी स्थिति में संभव है जब शिक्षा को राष्ट्रीय जीवन के साथि जोड़कर उसकों सोद्देश्य रूपायित किया जाता है। राष्ट्रीय जीवन के साथ शिक्षा को जोड़ना एक कठिन समस्या है। राष्ट्र को प्रायः राजनीति के चश्में से देखा जाता है। और राजनीति राष्ट्र को नियंत्रित करती है। किसी भी राष्ट्र की राजनीति एक आदर्श पर चलती है और यह आदर्श उस राष्ट्र के संवैधानिक प्रावद्यानों में परिलक्षित होते है। सामान्यतः किसी भी देश के संविधान को केवल उसका एक राजकीय ग्रंथ माना जाता है, उसका सम्पूर्ण राष्ट्र जीवन से क्या संबंध है, उसे समझने का प्रत्न नहीं किया जाता है। परन्तु जब हम प्रजातंत्र की बात करते हैं तो संविधान का महत्व और अधिक बढ़ जाता है क्योंकि उसके अनुसार ही देश की राजनीति को मार्गदर्शन प्राप्त होता है। भारतीय संविधान में राष्ट्र जीवन के लगभग सभी पहलुओं पर थोड़ा बहुत उल्लेख किया गया है। विदेशी शिक्षा के कुप्रभाव से भारतीय समाज को मुक्त करने के लिए संविधान निर्माताओं ने शिक्षा सम्बन्धी प्रावद्यानों को भी भारतीय संविधान में सम्मिलित किया जिसका मुख्य उद्देश्य भारतीय समाज में बढ़ते हुए भौतिकता के प्रभाव को कम करना एवं उपेक्षित आध्यात्मिकता एवं नैतिकता के मूल्यों की पुर्नास्थापना करना था। शिक्षा के भीतर अथाह शक्ति होती है, जो मनुष्य के मस्तिष्क एवं व्यवहार दोनों को प्रशान्त करती है। कभी–कभी जिन समस्याओं को वैधानिक रूप से नहीं सुलझाया जा सकता है उन्हें सुलझाने का उत्तर दायित्व भी शिक्षा पर आ जाता है। भारत जैसे विविधता वाले देश में शिक्षा के माध्यम से ही नागरिकों में दूरदर्शिता और मानवहित के भावों को जाग्रत किया जा सकता है। केवल शिक्षा के द्वारा ही विविध संस्कृति वाले लोगों में संहिष्णुता और विस्तृत दृष्टिकोण को उत्पन्न करना संभव है। शायद यही कारण है कि हमारे संविधान निर्माताओं ने देश में राष्ट्रीय एकता को बनाए रखने के लिए शिक्षा सम्बन्धी प्रावधानों को संविधान में स्थान दिया है।

स्वतंत्र भारत में शिक्षा के संवैधानिक स्वरूप की आवश्यकता

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत में सामाजिक, राजनैतिक एवं आर्थिक क्षेत्र में तीव्रगति से परिवर्तन लाने के लिए प्रयास प्रारम्भ किए गए। भारतीय नेताओं, विशेषकर प्रथम प्रधानमंत्री पं0 जवाहरलाल नेहरू ने भारत को विश्व के अन्य विकसित देशों के समकक्ष लाने के लिए पंचवर्षीय योजनाओं का निर्माण किया। इन पंचवर्षीय योजनाओं का निर्माण किया। इन पंचवर्षीय योजनाओं में भारत में शिक्षा व्यवसायी सम्बन्धी कार्यक्रमों को प्रमुख स्थान दिया गया। नवस्वतंत्र राज्य होने के कारण निम्न दो कारणों से शिक्षा पर विशेष ध्यान देना अनिवार्य था–

1. भारत में स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् लोकतंत्र को अपनाया गया था और लोकतंत्र की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि राज्य में रहने वाले नागरिक अपने अधिकारों को समझे और अपने कर्त्तव्यों का पालन ईमानदारी से करें। इसके लिए नागरिकों का शिक्षित होना अनिवार्य है।
2. देश में आर्थिक विकास लाने के लिए नवीन उद्योग–धन्धों को स्थापित किया गया था, जिनमें कार्य करने के लिए कुशल श्रमिकों की आवश्यकता थी, जिनकी पुर्ति शिक्षा के प्रसार से ही संभव थी।
3. भारत के संविधान में शिक्षा सम्बन्धी प्रावद्यान

विश्व के इतिहास में भारत अपनी शिक्षा एवं संस्कृति के लिए सदा ही प्रसिद्ध रहा है। हमारे संविधान निर्माताओं ने भी इस बात को भली भाँति समझ लिया था कि शिक्षा द्वारा ही व्यक्ति का सर्वांगीय विकास, सामाजिक, राजनैतिक एवं राष्ट्रीय उन्नति संभव है। इसलिए उनके द्वारा संविधान में भी शिक्षा सम्बन्धी प्रावधानों को उचित स्थान प्रदान किया गया। भारत के संविधान के निम्न भागों में शिक्षा व्यवस्था से जुड़े प्राविद्यान परिलक्षित होते हैं–

प्रस्तावना–

भारत के संविधान की प्रस्तावना के अनुसार हम भारत के लोग, भारत को सम्पूर्ण प्रमुख सम्पन्न, समाजवादी, पंथनिरपेक्ष, लोकतंत्रात्मक, गणराज्य बनाने के लिए तथा उसके समस्त नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय, विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतंत्रता प्रतिष्ठा और अवसर की समता प्राप्त करने के लिए तथा उन सब में व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता और अखंडता सुनिश्चित करने वाली बंधुता बढ़ाने के लिए दृढ़ संकल्प होकर अपनी इस संविधान सभा में एतद् द्वारा इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं।"

संविधान की प्रस्तावना में वर्णित लोकतंत्रात्मक न्याय, स्वतंत्रता, समता, बंधुता जैसे शब्द निश्चित रूप से हमारे राष्ट्रीय जीवन, राजनीति और शैक्षिक उद्देश्यों या मूल्यों को परिभाषित करने वाले शब्द प्रतीक है। 1948 के विश्वविद्यालय–शिक्षा से सम्बन्धित डॉ0 राधाकृष्णन आयोग ने भारती शिक्षा के उद्देश्यों का निर्धारण इन्हीं शब्दों के विस्तार से किया है। लोकतंत्र की मूल भावना व्यक्ति के अस्तित्व को मानने से, उसकी भावनाओं, इच्छाओं रूचियों, और आवश्यकताओं को मान्यता देने से प्रारम्भ होती है। यह हमारे व्यक्ति के साथ व्यक्ति रहने का समायोजन है। शिक्षा का कोई ज्ञान और अनुभव हमें यह व्यवहार, यह समायोजन नहीं सिखाता, तो वह हमारे लिए निमूल्य है। समाजवाद का तात्पर्य समाज से प्राप्त उन न्याय, स्वतंत्रता से हो सकता है, विकसित हो सकता हे, इन अनिवार्य शर्तों के साथ ही हम समाज के अंग बनकर रह सकते है, इन शब्दों की गरिमा तभी समझी जा सकती है, जब हम उसके योग्य बने और यह योग्यता शिक्षा के मूल्यों के समझने से आती है। शिक्षा की विषयवस्तु, शिक्षाविधान और प्रशासनिक योजना का ऐसा होना आवश्यक है जो हमें न्याय, स्वतंत्रता, क्षमता की गरिमा का कदम–कदम पर अनुभव करा सकें। बंधुता निजता के घेरे को तोड़ने का नाम है, जिसमें हम मानवता की बात करते है। जिस समाज में हम रहते हैं वह मानव समाज ही है। हमसें सब कुछ भिन्नताएँ होते हुए भी, मानवता की दृष्टि से हम सब समान है। यही अनुभूति बन्धुत्व है। इस अनुभूति के लिए अपनी रूढ़ियों को त्यागना अथवा बदलना आवश्यक है। और यह मात्र शिक्षा के संभव है अर्थात् हमारी शिक्षा व्यवस्था का ऐसा होना आवश्यक है जो हमारे अंदर मानवता के भावों को जाग्रत कर सकें।

मौलिक अधिकार–भारतीय संविधान में वर्णित मौलिक अधिकार सभी नागरिकों को शैक्षिक एवं संस्कृतिक विकास का पूर्ण अधिकार प्रदान करते हैं। संविधान के भाग तीन अनुच्छेद 29 एवं 30 नागरिकों को संस्कृति और शिक्षा सम्बन्धी अधिकार प्रदान करते हैं। संविधान के भाग तीन अनुच्छेद 29 एवं 30 नागरिकों को संस्कृति और शिक्षा सम्बन्धी अधिकार प्रदान करते है। अनुच्छेद 29 (2) के अनुसार, राज्य द्वारा पोषित या राज्य निधि से सहायता पाने वाली किसी शिक्षा संस्था में प्रवेश से किसी भी नागरिक को केवल धर्म, मूलवंश, जाति, भाषा या इनमें से किसी के आधार वंचित नहीं किया जाएगा। "अनुच्छेद 30 (1) के अनुसार, धर्म या भाषा पर आधारित सभी अल्पसंख्यक वर्गों को अपनी रूचि की शिक्षा संस्थाओं की स्थापना और प्रशासन का अधिकार होगा।" इसके अतिरिक्त अनुच्छेद 30 (2)

राज्य को निर्देशित किया गया है कि "शिक्षा संस्थाओं को सहायता देने में राज्य किसी शिक्षा संस्था के विरूद्ध इस आधार पर विभेद नहीं करेगा कि वह धर्म या भाषा पर आधारित किसी अल्पसंख्यक वर्ग के प्रबन्ध में है।"

संविधान के उपर्युक्त प्रावद्यान यह स्पष्ट करने के लिए पर्याप्त है कि स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत के विकास में शिक्षा की भूमिका को हमारे संविधान निर्माता भली–भाँति समझते हो और वे इस तथ्य से परिचित थे कि केवल शिक्षा के माध्यम से ही लोकतंत्र को भीड़तंत्र होने से बचाया जा सकता है। इतना ही नहीं संविधान के छियासीवें संशोधन अधिनियम, 2002 के द्वारा प्रदत्त शिक्षा के अधिकार को भी मौलिक अधिकारों में स्थान प्रदान किया गया है। शिक्षा को व्यवस्थित जीवन का आधार मानते हुए अनुच्छेद 21 में प्रदत्त प्राण और दैहिक स्वतंत्रता के संरक्षण के अधिकार के साथ अनुच्छेद 21 (क) जोड़कर यह प्रावधान किया गया है कि, "राज्य, छः वर्ष से चौदह वर्ष की आयु तक के सभी राज्यों को निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा इस प्रकार प्रदान करेगा जिस प्रकार से राज्य विधि के अधीन निर्धारित करें।"

भारत एक स्वतंत्र, धर्मनिरपेक्ष एवं प्रजातांत्रिक राज्य है। यहाँ शिक्षा का उद्देश्य नागरिकों को योग्य एवं चरित्रवान बनाना है जो अपने स्वार्थों को त्याग कर राष्ट्रीयहित एवं मानवहित के कार्यों को सम्पन्न कर सकें। यही कारण है कि मूल अधिकारों में शिक्षा सम्बन्धी अधिकारों को भी सम्मिलित किया गया है।

राज्य के नीति निर्देशक तत्व–समाज से विषमताओं को समाप्त करने एवं बालश्रम जैसी बुराईयों को समाप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि राज्य के सभी बच्चों को शिक्षा प्रदान की जाए। इसी उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए संविधान अनुच्छेद 41 में राज्य को निर्देशित किया गया है कि "राज्य अपनी आर्थिक सामर्थ्य और विकास की सीमाओं के भीतर काम पाने के, शिक्षा पाने के अभाव की दशाओं में लोक सहायता पाने के अधिकार को प्राप्त कराने का प्रभावी उपबन्ध करेगा।" अनुच्छेद 45 के अनुसार राज्य प्रारम्भिक शैशवावस्था की देखरेख और सभी बालकों को उस समय तक जब तक कि वे छः वर्ष की आयु पूर्ण न कर लें शिक्षा प्रदान करने के लिए प्रयास करेगा।" अनुच्छेद 45 के अनुसार, राज्य, जनता के दुर्बल वर्गों के, विशिष्टतया अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जन जातियों के शिक्षा और अर्थ सम्बन्धीहितों की विशेष सावधानी से अभिवृद्धि करेगा और सामाजिक अन्याय और सभी प्रकार के शोषण से उनकी संरक्षा करेगा।" स्वतंत्र भारत में आर्थिक पुनर्निमाण के कार्य को सफल बनाने के लिए यह आवश्यक था कि शिक्षा को लोगों के जीवन आवश्यकताओं और आकांक्षाओं से सम्बन्धित करके समाज के सभी वर्गों को उसके लाभ प्राप्त करने का अवसर प्रदान किया जाए ताकि आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक और सांस्कृतिक विकास के राष्ट्रीय लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सकें।

मूल कर्त्तव्य–भारत देश में भिन्न–भिन्न भाषाओं, विचित्र विचारधाराओं, अलग संस्कार वाले लोगों में उद्देश्य सम्बन्धी एकता स्थापित करना ही अत्यधिक कठिन कार्य है, फिर शिक्षा के दायित्व को मूल कर्त्तव्यों में सम्मिलित किया गया।

संविधान का अनुच्छेद 51 क (ट) के अनुसार, जो माता–पिता या संरक्षक हो वह, छः से चौदह वर्ष के बीच की आयु के, यथास्थिति, अपने बच्चे अथवा प्रतिपाल्य को शिक्षा प्राप्त करने के अवसर प्रदान करेगा। वस्तुतः शिक्षा देश, जाति, धर्म–कर्म, लघु–महान की सीमाओं से निरपेक्ष है। यही कारण है कि संविधान मौलिक अधिकारों, राज्य के नीति निर्देशक तत्वों एवं मूल कर्त्तव्यों में शिक्षा सम्बन्धी प्रावधानों को पर्याप्त स्थान दिया गया है ताकि प्रस्तावना में उल्लिखित उद्देश्य को प्राप्त करना संभव हो सके।

वर्तमान भारत में षिक्षा का मूल्यांकन

समाज में शिक्षा को व्यक्ति को अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँचाने तथा राष्ट्रीय आकांक्षाओं की पूति हेतु उपयोगी मनुष्य बनाने का साधन माना जाता है। इसके लिए व्यक्ति एवं समाज के हितों एवं दोनो के मध्य खामंजस्य निहित है। स्वतंत्र भारत में हमने प्रजातंत्र को अपनाया है किंतु हमारी शिक्षा पद्धति प्रजातंत्र के अनुकूल नागरिकों को विकसित करने में नाकाम रही है। देश का विभाजन हो जाने के पश्चात् भी हम साम्प्रदायिक की इच्छा से उसके महत्व को पुनः जाग्रत कर दिया जाता है।

सामाजिक विषमताएं ज्यों की त्यों बनी है। अभी भी बहुतों को दोनों वक्त का भोजन, रहने के लिए आवास एवं मौसम के अनुकूल तन पर वस्त्र उपलब्ध नहीं है। प्रान्तीयता एवं क्षेत्रवाद भी स्थानीय नेताओं की अपनी व्यक्तिगत, राजनैतिक महत्वांकांक्षाओं के कारण बढ़ रहे है। विभिन्न आर्थिक विषमताओं एवं शोषण के अतिरिक्त भ्रष्टाचार और बढ़ती अपराधी मनोवृत्ति किसी से छिपी नहीं है। बेकारी की समस्या भी दिन प्रतिदिन गंभीर होती जा रही है। विशेषकार शिक्षित वर्ग में तो यह समस्या अधिक विकर है। वर्तमान में जहाँ एक ओर शिक्षित व्यक्तियों के स्वावलंबन का अभाव है वही दूसरी और शिक्षित व्यक्तियों में स्वावलंबन का आभाव है वहीं दूसरी और मानव शक्ति के सम्बन्ध में ठीक प्रकार पूर्व नियोजन न होना है। सीमित साधनों द्वारा इतनी बड़ी जनसंख्या को जीवित रखने के साथ–साथ जीवन का उच्च स्तर प्रदान करना कठिन है।

वर्तमान भारत में आवश्यकता है कि शिक्षा के उद्देशों में सामाजिक एवं आर्थिक विषमताओं को दूर, करना, धार्मिक कट्टरल, क्षेत्रीयवादी तथा जातिवाद से देश के वातावरण को मुक्त करना, सभी प्रकार के शोषण एवं ऊँच–नीच के भेद से स्वतंत्र होकर राष्ट्रीय जीवन से भ्रष्टाचार को समाप्त करना, देश की आर्थिक समृद्धि एवं चतुर्मुखी विकास में सबको यथा योग्य सहभागिता होना, प्रत्येक व्यक्ति द्वारा बेकार न रहकर विश्वहित साधन में जुटना, अंतर्राष्ट्रीय पटल पर अपने स्बावलंबन एवं स्वाभिमान के भाव को जीवित रखने के भावों को सम्मिलित किया जा सकें। ऐसी शिक्षा को अपनाकर ही देश के नागरिक अपने व्यक्तित्व का पूर्ण विकास करने के साथ–साथ देश की प्रगति में सहयोग देंगे, विभिन्न प्रकार की सामाजिक विषमताओं एवं भ्रष्टाचार के उन्मूलन के लिए सचेष्ट होंगे। यदि वर्तमान शिक्षा प्रणाली में उपर्युक्त तथ्यों का समावेश हो तो मनुष्य के विकास के साथ–साथ समाज का भी विकास होना निश्चित है। भारत विश्व का सबसे बड़ा प्रजातंत्र है। यह सच्चे अर्थों में एक सफल प्रजातंत्र तभी हो सकता है जब यहाँ जाति विहीन एवं वर्गविहीन समाज की स्थापना हो जाए। समाज में यह जागरूकता भी शिक्षा द्वारा ही उत्पन्न की जा सकती है। व्यक्ति एवं समाज का संतुलित विकास केवल शिक्षा के माध्यम से ही संभव है। परिस्थितियाँ कैसी भी हो, शिक्षा सम्बन्धी योजनाएँ भारत के स्वतंत्र धर्मनिरपेक्ष, गणतंत्रात्मक स्वरूप को जीवित रखने वाली होनी चाहिए। प्रजातंत्रात्मक नागरिकता का विकास व्यवसायिक कुशलता में वृद्धि, व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास तथा नेतृत्व का विकास ही शिक्षा के प्रमुख उद्देश्य है। शिक्षा मतदाताओं को जागरूक बनाती है करदाताओं को कर्त्तव्य बोध कराती है। जब तक किसी देश का करदाता और मतदाता अपने कर और मत का मूल्य नहीं समझता। तब तक प्रजातंत्र मात्र धोखा है। ऐसे में मतदाता और करदाता को शिक्षित करना राजय का कार्य होना चाहिए। वह शिक्षा जो मानव को शांति और सौहार्द्रपूर्वक आपस में रहने के गुणों का विकास नहीं करती, वास्तव में शिक्षा नहीं है।

निष्कर्ष– शिक्षा आत्मज्ञान एवं आत्म प्रकाशन का श्रेष्ठत माध्यम है। शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य मानव को पूर्ण बनाना है। एक सभ्य समाज में शिक्षा ही नागरिकों को आर्थिक, राजनीतिक एवं सामाजिक समस्याओं के प्रति जागरुक करती है। अपनी इसी सोच के आधार पर भारतीय संविधान निर्माताओं ने हम भारतीयों को शिक्षा का मौलिक अधिकार प्रदान किया। शिक्षा के माध्यम से ही देश में आर्थिक एवं सामाजिक विषमताओं को समाप्त किया जा सकता है। यदि हमें लोकतंत्र को सही अर्थों में सफल बनाना है तो समस्त प्रकार के भ्रमों से बचकर और व्यक्तियों की बाते कम सुनते हुए उस संविधान की शरण में जाना ही होगा। जो जनभावनाओं का नेतृत्व करता है। नागरिकों को दिया गया व्यस्क मताधिकार तभी उपयोगी है। जब व्यक्ति सोच–समझने की शक्ति रखना हो, अपना निर्णय ले सकता हो और फिर निर्भय होकर किसी मतदान में सम्मिलित हो सकता हो। किन्तु इस तथ्य से भी इंकार नहीं किया जा सकता कि बीते वर्षों में हमारी शिक्षा का गठन संविधान की आकांक्षाओं के अनुसार कम तथा व्यक्तियों वर्गों, जातियों और धर्मों की इच्छाओं के अनुसार अधिक हुआ है। अंग्रेजों के समय की शिक्षा पद्धति में यदि कोई मूलभूत अंतर आया है तो केवल यह कि पहले हम अंग्रेजों के माध्यम से ऐसी शिक्ष प्राप्त करने को विवश थे जो हमें नौकरी के पीछे दौड़ाती थी, और स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् अंग्रेजों के स्थान पर हम स्वयं इस कार्य को कर रहे हैं। भारत की राष्ट्रीय एकता को बनाए रखने एवं वैश्विक पटल या उन्नति करने के लिए आवश्यक है कि शिक्षा

व्यवस्था में मूल भूत परिवर्तन किया जाएँ, जिसका आप सभी सम्प्रदाय के लोगों को प्राप्त हो सकें तथा उनमें सहयोग एवं परस्पर निर्भरता की भावना विकसित हो सकें।

सन्दर्भ–

1.संविधान एक अध्यन– पृष्ट संख्या 560
2. वैदिक साहित्य का इतिहासा –पृष्ट संख्या 124
3.प्राचीन इतिहास –पृष्ट संख्या 251
4.संस्कृति और शिक्षा एक अध्यन–पृष्ट–22
5.संस्कृति और शिक्षा एक अध्यन–पृष्ट–157